International Journal of Applied Research 2019; 5(8): 164-183

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2019; 5(8): 164-183
www.allresearchjournal.com
Received: 28-06-2019
Accepted: 30-07-2019

पूजा आराधना मिश्र
Post- Student, Rajendra University Balangir Odisha, India

Correspondence
पूजा आराधना मिश्र
Post- Student, Rajendra University Balangir Odisha, India

दलित साहित्य का इतिहास

पूजा आराधना मिश्र

प्रस्तावना

दलितों का प्रारंभ

दलित - साहित्य की तात्पर्य

दलित - साहित्य से तात्पर्य दलित जीवन और उसकी समस्याओं पर लेखन को केंद्र में रखकर हुए साहित्यिक आन्दोलन से है । जिसका सूत्रपात दलित पैंथर से माना जा सकता हे । दलितों को हिन्दू - समाज व्यवस्था में सबसे निम्नतर स्थान में होने के कारण न्याय, शिक्षा, समानता तथा स्वतंत्रता आदि मौलिक अधिकारों से भी वंचित रखा गया । उन्हें अपने ही धर्म में अछूत या अस्पृश्य माना गया । दलित - साहित्य की शुरुआत मराठी से मानी जाती है, जहाँ दलित पैंथर आन्दोलन के दौरान बड़ी संख्या में दलित जातियों से आए रचनाकारों ने आम जनता तक अपनी भावनाओं, पीडाओं, दुखों-दर्दों के लेखों, कविताओं, निबंधों जीवानियों, कटाक्षों, व्यंग्यों आदि के माध्यम से पहुंचाया । हालांकि साहित्य में दलित वर्ग की उपस्थिति बौद्ध काल से मुखरित रही हे, किन्तु एक लक्षित मानवधिकार आदोंलन के रूप में दलित साहित्य मुख्यतः बीसवी सदी की देन है । रविन्द्र प्रभात ने अपने उपन्यास ताकि बचा रहे लोकतंत्र में दलितों के सामाजिक स्थिति की बृहत चर्चा की हे, वहीं डॉ. एन सिंह ने अपनी पुस्तक" दलित - साहित्य के प्रतिमान" में हिंदी दलित - साहित्य के इतिहास को बहुत ही विस्तार से लिखा है

दलित साहित्य का आरम्भ

आज दलित साहित्य जिन अर्थो में परिभाषिक रूप में चर्चा होती है, उन अर्थो में दलित साहित्य एक आन्दोलन के रूप में १९६० के आस पास मराठी भाषा में आरम्भ हुआ और १९७० तक मराठी साहित्य में केंद्रीय महत्व प्राप्त कर लिया था, यह केन्द्रीय महत्व आज भी मराठी में दलित साहित्य को प्राप्त है,

मराठी के दलित साहित्यिक आन्दोलन ने अन्य भारतीय भाषाओं को प्रभावित तो किया लेकिन लगभग दो दसक के बाद अन्य भारतीय भाषाओं जैसे; कन्नड़, गुजरती, हिंदी, आदि में दलित साहित्य की गूंज १९८० के बाद ही सुनाई देता है, अब अन्य भाषाओं जैसे; पंजाबी, तेलुगु, तमिल आदि में फैल चुकी है, मराठी में 'दलित - साहित्य' पारिभाषिक रूप में आधुनिक काल में ही प्रचलित हुआ और इस साहित्यिक आन्दोलन के वैचारिक प्रेरणा डॉ.भीम्रराव अम्बेडकर और महात्मा ज्योतिवाफुले आदि के विचारो वो उनके व्दारा चलाये गये सामाजिक,राजनैतिक आंदोलनों से मिली, लेकिन परंपरा रूप में मराठी दलित साहित्य ने स्वयं को मराठी भक्त कवियों विरोध रूप से जोखा मैला जो चौधवी सदी केप्रमुख मराठी संत कवि हुए है; उनसे जोड़ा, साथ ही भक्त नामदेव, एक नाथ, समर्थ रामदास आदि की परंपरा को मराठी दलित साहित्य ने अपनाया ।

उत्तरी भारत में भी संत परंपरा या भक्ति आन्दोलन का स्वरुप ऐसा रहा कि उसमें दलित भावनाओं को धार्मिक स्वरुप में अभिव्यक्ति मिली, सिद्ध नाथ परंपरा से लेकर चौधबी - सौलहवी सदी के बीच के भक्ति काल में अनेक ऐसे संत और भक्त कवि हुए जिन्होंने अपने जीवन की दलित पृष्ठभूमि व अनुभवों को धार्मिक रूप में अपने वाणी में प्रस्तुत किया, इन संत कवियों में सर्वाधिक शक्तिशाली स्वर रहे _ संत कबीर गुरु रविदास के इनके अतिरिक्त भी सैन नामदेव, त्रिलोचन, रबजब, गरीब दास अनेक ऐसे कवि हुए जिन्होंने दलित जीवन व भावनाओं की बड़ी सशक्त अभिव्यक्ति अपनी वाणी में इसमें से अनेक भक्त कवियों को सिखों के पांचवे गुरु अर्जुन देव व्दारा सम्पादित मध्य काल में अत्यधिक महत्वपूर्ण धार्मिक व साहित्यिक संकलन 'आदि ग्रन्थ या 'गुरु ग्रन्थ साहेव' में स्थान दिया गया, आदि ग्रन्थ में सिख गुरुओं की वाणी के अतिरिक्त मध्यकाल के उन अनेक भक्त कविओं के वाणी को संकलन किया गया, जो धार्मिक पाखन्ड़ो के कुरीतियों के विरुद्ध थे तथा व्यापक रूप में मानव केन्द्रिक धार्मिक आस्था या निर्गुणवादी धार्मिक विचारों से प्रेरित थे,संत कबीर की वाणी को सिख गुरुओं के बाद सर्वाधिक सम्मानीय स्थान 'आदि ग्रन्थ' में दिया गया और कबीर के बाद गुरु रविदास के वाणी में जाती-पाती जैसी कुरीतियों का खंडन किया और "मानस की जात सभै एकौ पहचानबो" आदि धारणाओं को ससक्त अभिब्यक्ति सिखो के दसबे गुरु 'गुरु गोविन्द सिंह' ने सिख धर्म को संगठित रूप दिया,व व्यवहारिक रूप में जाति व्यवस्था पर चौट की, १६९९ की वैषाखी पर 'खालसा पंथ' के सृजन के समय उन्होंने प्रथम पांच प्यारों का चुनाब निम्न जाती समझी जाने वाली जाती विहीन संगठन के सृजना के ३०० वर्षों में ही सिखों में भी जाती आधारित गुरूव्दारों का निर्माण कइ दशक पहेले से शुरु हो चुका था ।

उत्तर भारतीय संत - मत या भक्ति आन्दोलन का संक्षिप्त परिचय इस दृष्टी से दिया गया है कि भारतीय समाज वेदों के समय से ही जातिगत आधार पर विभाजित रहा है । वेदों के समाय में इसे वर्ण व्यवस्था कहा गया । जो जन्म आधारित भी थी व कर्म या पैसा आधारित भी लेकिन वर्ण व्यवस्था अतीव विकृत हो कर पूरी तरह जाती विभाजन व अस्प्रुस्यता के रूप में बदल गयी । जिसमें भारतीय समाज के एक बहुत बड़े हिस्से शूद्रों को अस्पृस्य बना दिया गया । चांडाल, मांगी, जुलाहे, चमार, धोबी, कुम्भर आदि जातियों को निम्न व अस्पृश्य जातियां बना दिया गया, और उन्हें गाँव व सेहर में 'शिष्टजनो' अर्थात ब्राह्मण, क्षेत्रीय व वैश्य मेहेलों से दूर अलग अलग जीने की बड़ी कठोर परिस्थितियों में रहेने के लिए

विबश किया गया । हिन्दू धर्म के अनेक धर्मग्रंथों व स्मृतियों की रचना इस अमानवीय जाती व्यवस्था को उचित ठेहेराने के लिए की गयी लेकिन हर सौ दोंसौ वारों पर ऐसी अमानवीय परिस्तिथि के खिलाप किसी न किसी रूप में आवाज उठती रही । इस अमानवीय व्यवस्था के कारण भारतीय समाज में धर्म परिवर्तन भी होता रहा । अस्पृस्यता के ढंग से पीड़ित हो कर शुद्र अन्य धर्मो जैसे इस्लाम, बौद्ध आदि के अनुयायी बनते रहे । यहाँ तक कि आधुनिक काल में डॉ. अम्बेडकर जैसे अत्यंत प्रखर बुद्धिजीवी व प्रकांड विव्दान् न को भी जीवन के अंतिम महीनों में धर्म परिवर्तन का निर्णय लेना पडा । मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन भी एक स्थर पर पुरे भारत में सामजिक उत्पीडन के अनेक रूपों के प्रति एक विद्रोह ही था । जो आध्यात्मिक स्वरुप में था । मध्यकालीन भक्त कविओं और संतों ने अपनी वाणी में एक और हिन्दुओं की धार्मिक कट्टरता, कठोरता, कुरीतियों व पाखन्डतापूर्ण व्यवहार के खिलाफ आवाज बुलंद की तो दूसरी ओर गुरु नानक ने वाबर के अत्याचारों के खिलाफ हिंदुस्थान की आवाज़ को वाणी दी । कबीर वाणी के विद्रोह स्वर से कई साहित्यिक, सौंदर्यशास्त्रीयों को रविदास की वाणी कबीर की अपेक्षा मधुर और निरीह लगती है । जबकि वास्तविकता यह है कि आतंरिक विषय वस्तु में कबीर और रविदास की वाणी में तात्विक अंतर नहीं है। एक ही तरह के स्थिति को दोनों अपने-अपने ढंग से केहतें है, जबकि दोनों का अन्दाजें बयाँ अलग है । १९८० के बाद जब हिंदी साहित्य में दलित स्वर उतरें तो इन स्वरों ने निश्चित रूप से आधुनिक मराठी दलित साहित्य अथवा उत्तर भारत के दलित साहित्य की मध्यकालीन परम्परा भी मौहजूद थी, इसीलिए इन वर्षो में रविदास वाणी की और अधिक ध्यान दिया गया । कबीर की चर्चा के पहेले से ही थी । कबीर और रविदास समकालीन थे । दोनों बनारस के नजदीक पैदा हुए थे । उनके बीच संवाद हुआ भी बताया जाता है । जो सेन भक्त व्दारा प्रस्तुत किया मन जाता है । उस संवाद का निष्कर्ष यह है कि सगुण मार्गो रविदास ने इस गोष्टी के बाद कबीर द्वारा प्रतिपादित निर्गुण मत को अपना लिया था । इस गोष्ठी की प्रामाणिकता सिद्ध नहीं है । लेकिन कबीर और रविदास वाणी में तात्विक रूप से इतनी साम्यता है कि वे एक ही धारा के अंग जान पड़ते हैं । कबीर और रविदास दोनों ने ही अपने निम्नं जाती के तथ्यों को सर्म से गर्व से धोबित किया और उच्च जातिगण अभिमान को मिथ्या सिद्ध किया हे। मध्यकाल में भारतीय समाज के जातीगत विभाजन का विरोध इसी रूप में सबसे सशक्त हो सकता था जिस रूप में कबीर और रबिदास ने किया । आधुनिक दलित साहित्य ने भी अपनी पहचान समाज के विकृत जातिगत ढाचें के प्रति अपना आक्रोश जता कर की हे ।

दलित साहित्य की जड़ें - कबीर और रबीदास की वाणी में देखि जा सकती हे । इसीलिए सही माएनो में कबीर और रबिदास हिंदी दलित साहित्य या उत्तरी भारत दलित साहित्य के अग्रदूत हैं । इस प्रकार हिंदी दलित साहित्य का आरम्भ मध्य काल के भक्ति आंदोलन से हुआ ।

दलित साहित्य की अवधारणा

यह वास्तव में दलित की अवधारणा से जूडी हुई है । दलित किसे कहतें हैं अरविन्द कुमार और कुसुम कुमार ने अपने हिंदी थिसारस में दलित के कई संदर्भगत अर्थ दिए गए हैं । एक अर्थ है “शोषित एक अर्थ है “पराजीव”, जिसमें “दमित, “विजित” आदि अनेक भावार्थ सामिल है । एक अर्थ ‘पद दलित’ है जिसमें दलित पदाक्रांत अर्थ सामिल है । ज्ञान शब्दकोश में दलित का अर्थ रोंदा, कुचला, दबाया हुआ पदाक्रांत अर्थ सामिल है। ज्ञान शब्दकोष में इस के साथ हिन्दुओं में वे

शुद्र जिन्हें अन्य जातिओं के समान अधिकार नहीं है भी दिया गया है । माता प्रसाद ने अपनी पुस्तक 'हिंदी काव्य में दलित काव्य धारा में दलित शब्द के अनेक प्रयोगात्मक अर्थों की चर्चा की है । जिनमें 'चांडाल, 'अस्पृश्य, 'अछूत' आदि सामिल है । उपेक्षित, अपमानित, उत्पीडन, प्रताड़ित, भी इसी कोटी में आनेवाले शब्द । शब्द के व्यापक सामाजिक अर्थों में गुलाम, भूमिहीन, बंधुआ भी सामिल है । डॉ. चन्द्रकान्त बादिवेडेकर के अनुसार - "जिन जातियों को महात्मा गाँधी ने हरिजन कहाथा वे ही जातियां दलित नाम से पहेचाने जाते हैं" । श्री माता प्रसाद के अनुसार - "दलित वर्ग के अंतर्गत अनुसूचित जनजातियां और विमुक्त जातियां भी आ गयी"। भारत में आर्य जीते तो उन्होंने विजित जातियों - अनार्य, दास, असुर, दस्यु व आदिवासियों को शुद्र बनाडाला । सौ भारतीय समाज में दलित थे ही नहीं । ये एक ऐतिहासिक सामाजिक प्रक्रिया में भारत के मूल निवासियों से ही अप्राकृतिक बनाये गए हैं । अजीब बात यह है कि, विश्व के अनेक देशों से दास प्रथा सेकड़ों बरसों पूर्व समाप्त होगया। लेकिन हमारे देश में हजारों वर्षों से जबरदस्ती थोपी जाति व्यवस्था व एक बहुत बड़े मानव समूह का जातिगत आधार पर उत्पीडन के साथ दमन आजतक जारी है ।

शुद्र शब्द उन दलितों के लिए रूढ़ किया गया । जिनके अपमान या प्रतारणा का अधिकार समाज के शक्तिशाली वर्ग ने ग्रहण किया । हालांकि डॉ आम्बेडकर शुद्र जाति को सूर्यवंशी क्षेत्रीय मानते है। लेकिन वेदों उपनिषदों व शंकराचार्य ने शुद्र को जन्म से जोड़कर व अच्छे - बुरे कर्म के फल से जोड़कर शुद्र के नाम पर मनुष्य की प्रताड़ना को एक दैवी आधार प्रदान करने का प्रयास किया । यही तर्क हीन विचार आजतक हिन्दू समाज के बड़े हिस्से में बद्धमूल है । 'मनस्मृति' आदि ग्रंथो में शूद्रों के लिए सामान्य मानवीय जीवन इच्छा प्रकट करने पर भयंकर दंड विधान की व्यवस्था की गयी है । डॉ अम्बेडकर ने शूद्रों में भी 'अतिशूद्र' बताये गएँ हैं । जिनके साथ अकथनीय-अमानवीय व्यवहार किया जाता था । 'जाति - व्यवस्था' व अस्पृश्यता के अमानवीय विचारों का विरोध कई ४००० वर्ष पूर्व लौकिक्वादी, दार्शनिक 'चारमाट' ने किया । २५०० वर्ष पूर्व महात्मा बुद्ध ने इस भेद - भाव का सशक्त विरोध किया । जिससे बहुत से शुद्र बौद्ध धर्म में दीक्षित हुए । मध्यकाल में उत्तर भारत के भक्ति आन्दोलन के संतों व भक्त कवियों ने भी इस व्यवस्था का विरोध कर सिद्ध किया कि जाति व्यवस्था दैवीय विधान नहीं केवल मानव के शोषण के लिए बनाया गया सामाजिक विधान मात्र है । भारत में 'दलित' रूपी सामजिक समूह के निर्माण व इन समूह में जातिगत आधार पर उत्पीडित लोगों के सामिल होने व सदियों से इनका शोषण या उत्पीडन के प्रतिरोध की जानकारी के बाद 'दलित-साहित्य' की अवधारणा को स्पष्ट रूप से निर्धारित किया जा सकता है । 'दलित - साहित्य वह साहित्य है, जो दलितों के जीवन उनके सुख, दुःख', उनके सामजिक, राजनीतिक स्तिथियों उनकी संस्कृति, उनकी आस्थाओं - अनास्थाओं, उनके शोषण के व उत्पीडन तथा इस उत्पीडन शोषण के दलितो द्वारा "प्रतिरोध की परिस्थितियाँ" को व्यापकता तथा गहराई के साथ कलात्मकता से प्रस्तुत करता है" । हिंदी साहित्य के आरम्भ से ही काव्य में दलित जीवन का आरम्भ भी संस्कृति की आदि कवि वाल्मीकि के रूप में दलितों व्दारा ही माना जाता है, किन्तु न तो 'वाल्मीकि' रामायण में और न अन्य संस्कृति साहित्य में दलितों के प्रति कोई विशेष सहानुभूति नजर नहीं आती है । पाली साहित्य में जो अधिकांशतः बौद्ध प्रभाव में रचा गया है । 'दलितों' के प्रति करुणा है । हिंदी साहित्य का प्रारंभ १००० ई. के आसपास या उससे भी कुछ पहले ही माना

जाता है । हिंदी साहित्य के आरंभिक कवियों में सरहप्पा जैसे सिद्ध, नाथ, योगी, थे । इन सिद्ध नाथों की संख्या ७६ से लेकर १०६ तक मिलती है। इनमें सरहप्पा, जलंधर नाथ, आदिनाथ, गोरखनाथ आदि अनेक नाथ, सिद्ध प्रसिद्ध हुए है। सिद्ध नाथों पर ही बौद्ध धर्म का प्रभाव था और अनेक सिद्ध नाथ कवियों का सम्बन्ध दलित वर्गों से था । इनमें गोरखनाथ सर्वाधिक प्रसिद्ध हुए है । ये सही मायने में कबीर सामाजिक वाणी के अग्रज है । क्योंकि धार्मिक सामजिक पाखंडो को भेद भाव के प्रति गोरखनाथ भी कबीर जैसी कठोर भाषा की प्रयोग करतें है ।

इसी समय महाराष्ट्र में नाथ पंथ और बार्करी सम्प्रदाय क्रन्तिकारी वाणी का सृजन कर रहा था। संत नामदेव हिंदी, पंजाब, और मराठी, के बीच की कड़ी है । जो पंजाब में भी रहें, व इनकी रचना हिंदी में भी मिलती है, तथा 'आदिग्रन्थ' में भी संकलित है । हिंदी साहित्य के इन आरंभिक नाथ सिद्ध की रचना के पश्चात पूरा भक्ति काल ही जाति - पाती और कुरीति विरोध काल है । भक्ति काल के इन महान संत कवियों कबीर, रविदास, दादू दयाल, पलतू दास, मलूक दास, मीराबाई, सहजोबाई, दयाबाई, सुन्दर दास, रज्जब आदि ने अपनी वाणियों से निम्न कही जानेवालि जातियों में स्वाभिमान की भावना भरी हुई है । इन संत भक्त कवियों में कबीर और रविदास सही माएनों में उत्तर भारत के दलित साहित्य में अग्रदूत बनकर उभरे । क्योंकि उन्होंने जातिगत उच्चता की भावना को अपनी वाणी से ध्वस्त कर सच्ची मानव समता व कर्म आधारित उच्चता - निच्चाता की अवाधाराणाऐं विकसित की । हिंदी साहित्य का रीतिकाल हर दृष्टि से अनुर्वर और पतन काल है । बीच - बीच में कुछ कवियों को छोड़कर अधिकांशतः अत्याचारी सामंतों के चाटुकार कवि थे । जिसमें सारा बल श्रुन्गारिकता के चित्रण पर है । आधुनिक काल के आरम्भ में हिन्दी साहित्य फिर से सामाजिक यथार्थ की ओर लौटता है । भारतेंदु हरिश्चंद्र आदिकवि नाटककार हिंदी साहित्य को भारतीय जन की पीड़ा का उद्घोषक बना देतें है । भारतेंदु के बाद नाथूराम शर्मा शंकर रूप नारायण पांडे, राम्चान्द्रशुक्ल, सुभद्रा कुमारी चौहान, मैथिली शरण गुप्त, सोहनलाल दि्वेदी, गया प्रसाद शुक्ल सनेही, भगवती - चरण वर्मा आदि आदि अनेक कवि लेखकों ने छुआछुत और दलितों पर अत्याचार के विरोध में रचनाएँ की । छायावादी दौर में निराला दलितों की कथा को उभरने वाले प्रमुख साहित्यकार बने । निराला की 'दलित जान पर करो करुणा' आदि कवितायें 'चतुर चमार आदि अनेक कहानियाँ व उपन्यास दलित जीवन पर केंद्रित हैं । प्रगतिवाद का पूरा दौर ही दलित जीवन के संघर्षों को वाणी देनेवाला है । प्रेमचंद, यशपाल, अमृतलाल नागर, नागार्जुन, भेरव प्रसाद गुप्त, फणीश्वर नाथ रेणु, रांगय राघव आदि तमाम लेखकों ने दलित जीवन को केंद्र में रख कर अनेक रचनाएँ की । १९४७ के बाद के हिंदी साहित्य व विशेषतः १९७० के बाद के हिंदी साहित्य में दलित स्वर और भी प्रबल रूप में उभरें है । १९९० के बाद 'दलित ही दलित लेखन कर सकता है । ऐसे नारी भी उभरे । जगदिश चन्द्र, चतुर सेन शास्त्री आदि के उपन्यास ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहन दास नैमिस राय आदि की आत्मकथाएँ, माता प्रसाद आदि के शोध ग्रंथो ने हिंदी में दलित साहित्य को एक धारा के रूप में स्थापित कर दिया । हिंदी में "दलित साहित्य" एक प्रवृत्ति के रूप में वास्तविकता बना चूका था ।

दलित साहित्य की नयी सन्देश

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के समय गाँधी जी ने दलितों की स्थिति में सुधार लाने का आदेश दिया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने भी गाँधी जी के नेतृत्व में दलितों पर ध्यान केंद्रित कर सन १९१७

ई. में कांग्रेस ने कलकत्ता अधिवेशन में एक प्रस्ताव पास किया, "कांग्रेस भारतीयों से इस बात की अपील करती है कि रूढिगत परम्पराओं के फल स्वरुप दलित वर्ग पर जो अमानुषिक एवं दमनमूलक योग्यताएं थोप दी गयी है और जिनके कारण उन्हें असंख्य कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है, उनके निवारण के लिए आवश्यक कदम उठाये जायें" ।

स्वतंत्रता के पश्चात दलितों में नयी चेतना आई । मध्यकाल में से संत रविदास, संत कबीर दास जैसी ज्ञान मंडित प्रतिभाएं सामने आई है । कबीर ने एक जागरूक विचारक तथा निपुण समाज सुधारक के रूप में तत्कालीन समाज में व्याप्त बुराईयाँ जैसी जाति - प्रथा सबसे अधिक दुःखदायक थी, उन सभी पर निर्मम प्रहार किया । भारतीय चिंतन धारा में समानता की स्थापना करनेवाले कबीर प्रथम महापुरुष थे, उन्होंने शास्त्र के नाम पर प्रचलित भेदभाव की रुढियों का खंडन किया और स्पष्ट उद्घोषणा की - "जाति - पातिं पूछे नहीं कोई, हरी को भजै सो हरी का होई"

यह जाति - प्रथा विशेष रूप से दलितों के प्रति असमानातओं दण्डों तथा अयोग्यताओं के रूप में वर्ण-व्यवस्था का स्वभाविक परिणाम है । कल का दलित आज अपने को दलित कहता है ।

डॉ भीमराव अम्बेडकर ने 'ब्रेकिनं पीपुल' कहा । ये जितने भी शब्द दलित वर्ग को संघर्ष के लिए प्रोत्साहित करते है । महात्मागाँधी ने हरिजन शब्द देकर शूद्रों के प्रति अपनी सहानुभूति दिखाई है; लेकिन उसके पिछे कोई जागरूक प्रेरणा नहीं थी । डॉ अम्बेडकर जातिवाद के उद्गम और उसके स्वरुप की खोज करते हुए उसे पूरीतरह नष्ट करना चाहते थे । उन्हें अन्याय की जड मनुस्मृति ही दिखाई देती है, लेकिन अम्बेडकर एतिहासिक अर्थशास्त्र और समाजशास्त्र की जड़ को टटोलकर इस निर्णय पर पहुँचतें है कि - कोई भी व्यक्ति, चाहे वह कितना ही शक्तिशाली क्यों न हो, इतिहास की सम्पूर्ण शक्तियों को थामकर जाति - व्यवस्था का निर्माण नहीं कर सकता । यह बात अकल्पनीय है कि, अकेले मनु ने जाति का कानून बनाया । सच यही है कि, जाति मनु से पहेले अस्तित्व में थी । जाति व्यवस्था का एक चौखटा है जिसे ब्राम्हणों ने तैयार किया और उस पर स्वयं अपनी प्रतिष्ठा की मोहर लगा दी । उन्होंने जाति नियम इतने मजबूद किये कि जाति का उलंघन करनेवालों के लिए दंड व्यवस्था निर्धारित की । हिन्दू धर्म जातिवाद का हिमायती है, डॉ अम्बेडकर का मानना है कि, हिन्दू धर्म जातिगत घ्रुणावाद, अलगाववाद, को फैलाने में सहायता करता है । इस पर वो कहेतें हैं, "जिन हिन्दुओं में उदारता और मानवता की इतनी अच्छी परम्परा है और जिनका इतना उदात्त दर्शन है, वे मनुष्य के प्रति निषेध और असमर्थताएँ है । इस प्रणाली ने निहित स्वार्थों को जन्म दिया है जो इस प्रणाली जन्य असमानताओं को बनाये रखने पर आधारित है । अम्बेडकर की इस आवाज़ से गाँधी जी भी सहमत रहें है । जाति - प्रथा और असपृश्यता को गाँधी जी कलंक मानते रहे, लेकिन वर्ण व्यवस्था का समर्थन करते है और अम्बेडकर नहीं । अम्बेडकर सामाजिक सुधार की आवश्यकता से अधिक सामाजिक क्रांति के पक्षधर है । डॉ अम्बेडकर ने 'हू वर दि शुंद्राज' पुस्तक में शूद्रों के मूल के बारे में अपना निष्कर्ष निकला, "शुद्र आर्य समुदायों के सूर्यवंश में से एक थे" । दूसरी पुस्तक 'दि अनटचेबल्स : हू वर दे एंड व्याई दे विकेम अनटचेब्ल्स नार्मल में अछुतों के बारे में कहा, "हिन्दुओं और अछुतों में कोई नस्लगत भेद नहीं है।

अंततः भारतीय समाज धर्म और जाति पर आधारित है । वर्ण भेदपर आधारित समाज टुकड़ों टुकड़ों में बंटा हुआ है । पिछले पचास वर्षो में जितना दलित अहित हुआ है, आज उसका आकलन करना भी असम्भव है । भारतीय समाज

की परम्परा अपमान, घृणा, विरोध, की परम्परा है। डॉ अम्बेडकर ने दलित साहित्य के वास्तविक स्वरुप को एक नयी रौशनी दी है । उन्होंने संविधान में ऐसी व्यवस्था की जिससे समतामूलक समाज की स्थापना हो ।

अम्बेडकर चिंतन

अम्बेडकर की दलितोद्धार की परिकल्पना

राजनीतिक, वैचारिक, सांस्कृतिक क्रांति इसी युग की देन है । दलित साहित्य या अम्बेडकरवादी साहित्य सम्पूर्ण ब्राम्हणी, सामंती और सनातनी हिंदूवादी व्यवस्था को नकार देनेवाला साहित्य भी इसी युग की देन है । दलित साहित्य के अनन्य साधक, समता, बंधुत्व तथा मानवता के पक्षधर, अस्पृश्यता, पाखण्ड, आडम्बर, अन्याय, उत्पीडन, का प्रबल विरोध करनेवाले, दलितों के मुख्य प्रेरणा स्रोत डॉ अम्बेडकर ही है ।

दलित वर्ग के लोगों को जगाना व देश की आजादी के साथ साथ नयी व्यवस्था में दलितों के हितों को सुरक्षित करना ही दलितोद्धार आन्दोलन था । दलित वर्ग के मसीहा डॉ भीमराव अम्बेडकर ने अछूतोद्धार के लिए महान और क्रांतिकारी कार्य किये । उन्होंने दलित वर्ग को अज्ञान के अन्धकार से चातुर्वर्ण्य की चक्की में पिसने, दरिद्रता की आग से मुक्ति दिलाने के लिए अपना जीवन समर्पित कर दिया । डॉ अम्बेडकर के क्रांतिकारी व्यक्तित्व और कृतित्व से दलित वर्ग में अपूर्व जागृति उत्पन्न हुई । दलित वर्ग को सामाजिक न्याय दिलाने के लिए तत्कालीन सरकार को भी अम्बेडकर ने विवश कर दिया था । सरकार को दलित वर्ग के हित में और रक्षा के लिए कानून बनाने पड़े ।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर का नाम भारत के परिवर्तनवादी आन्दोंलन के इतिहास में सदैव रमणीय रहेगा । वे भारत के दलित समज के उद्धारक तथा पुरुषार्थ के प्रतिक थे । भारतीय समाज जो अनंत काल से जाति, वर्ण, विभाजन के कारण हजारों भागों में विभक्त था । उसके स्वीकरण का जो सराहनिय प्रयास अम्बेडकर ने किया, वह भारतीय इतिहास का सुनहरा अध्याय है । जाति प्रथा पर आधारित भारतीय समाज में जन्म आधारित विषमता थी । रोज़ी - रोजगार में भयंकर अंतराल था । प्रगति के अवसर जन्मनाजाति के आधार पर कुछ हिस्सों के लिए विशेष अवसर प्रदान करते थे और बहु संख्यक वर्ग के लिए आगे बदने के दरबाज़े बंद थे । व्दिजवादी उच्चता के शिकार अनंत काल से जन्म के अभिशाप से अभिशप्त एक बहु संख्यक वर्ग को अम्बेडकर ने अपने साहसिक नेतृत्व से आगे बढ़ने का अदम्य शक्ति दी । धर्म, आस्था, और विश्वास का आश्रय लेकर

समाज के एक सीमित हिस्से के लोगों व्दारा बहु संख्यक वर्ग को अछुत घोषित कर सम्पत्ति और रोजगार के सारा रस्ते पर अपना

अधिकार सुरक्षित कर लिया गया था । भागते इतिहास के मध्यकाल में इश्लाम का प्रवेश हुआ, बिदेसी आक्रमणकारी इश्लाम समर्थक सम्राट भी भारतीय समाज के दलित पिछड़े और अभिशप्त शुद्र समाज में समता के इश्लामी सन्देश को नहीं पहंचा सके । जाति प्रथा के कारण उपजी अशिक्ष्या सामाजिक परतंत्रता और कंगाली का कोई कारगर उपाय इनके भी राज्य काल में नहीं हुआ । क्योंकि उनके दरबारी और परामर्शदाता उच्चसमाज से ही होते थे । उन्हें बटें हुए समाज पर पर अपनी सत्ता का पकड़ मजबूत कर पाना एक आसान काम दिखाई पड़ता था । भारतीय समाज के व्दिज समुदाय द्वारा मिलने वाला अपेक्षित सहयोग इश मार्ग में बहुत बड़ी बाधा थी, यदपि मराठा साम्राज्य के उतकर्स के पीछे दलितों के जबरदस्त ताकत का होना भी एक कारण था । फिर भी मराठा नरेशों ने छुआछूत विनास के क्षेत्र में कोई कारगर कदम नहीं उठाया । छति

शाताब्धि ईशा पूर्ब में गौतम बुद्ध के नेतृत्वा में जाती प्रथा के खिलाफ प्रथम ब्यापक विद्रोह हुआ था । आध्यात्मिक स्थर पर गौतमबुद्ध वैचारिक, व्यापहारिक और आंतरिक समानता पर जोर दिया था । जैन मताबलाम्बियों ने भी इस धारा को आगे बढाया लेकिन ये सभी आन्दोलन जाति और वर्ण की काया में समा गये । भक्ति आन्दोलन के द्वारा रामानान्द स्वामी चैतन्य, कबीर दास, रेदास आदि संतों ने मानवीय एकता पर जोर दिया और बहुत हिस्सों में विभक्तिय विभिन्न भारतीय समाज के एकीकरण के दिशा में सुत्य प्रयास भी किया ।

१७वी १८वी शताब्दी में यूरोपीय देशों के आक्रमणकारी व्यापारी के वंश में भारत आए, पश्चिम एशिया और पूर्वी यूरोप के देशों में सत्ता संग्राम के साथ साथ धार्मिक जंग भी चल रही थी। इन क्षेत्रों में इसाई प्रचारोकों की दृष्टि भारत की और मुड़ी और वे भी एक के बाद एक पुर्तगाली, फ्रांसिसी और अन्ततः अंग्रेज भारत में आए । वे जहाँ भारत पर राज करना चाहते थे, वेसे ही इश्लामिक धर्म प्रचारक राज सत्ता के साथ भारत आए वेसे ही इशाई मिस्नेरी ने भी भारत में प्रबेश किया, किन्तु दोनों धर्मो के सामाजिक समानता के सन्देश उत्कट जिजीविसा युक्त भारतीय जन्म, वर्ण, समाज की ओर कोलाहल में दब गए । इश्लामी और इशाई राजसत्ता में विभक्त भारतीय समाज को शासित कर पाना आसान नजर आ रहा था । इशिलिये उनकी रूचि भारतीय एकता में नहीं रही । आगे चल कर १८ वी १९ वी शताब्दी में इतिहास ने करवट ली । यूरोपीय समाज से संपर्क में भी आधुनिक शिक्षा विज्ञान और तकनिकी के बारे में एक नयी रुझान पैदा हुई । भारत में युरोपिय संस्कारों के कारण वहाँ उत्पन्न व्यक्तिगत आजादी के विचार समानता की धारणा उपनिवेष के माध्यम से अविकसित राष्ट्रों के लुट के विरोध के भाव आदि पैदा हुए । फल स्वरुप भारत में भी सुधारवादी आन्दोलन की शुरुवात हुई । इन सुधारकों की धारणा थी - जबतक जन्म पर आधारित सामाजिक विषमता रहेगी, तबतक राजनीति में भी न्याय मिलेगा ।

भारतीय राष्ट्रवाद की आधुनिक अर्थों जब विवेचना होगी, उसमें बौद्धिक पुनर्जागरणबाद का अतुलनीय योगदान सामने आएगा । यह आन्दोलन मूलतः नैतिक और आध्यात्मिक प्रेरणा से जागृत हुआ । लेकिन इसमें भारतीय समाज में एकता और समता का चैतन्य भाव गेहेरे रूप में पैदा किया । यह आन्दोलन ईसाईयत की भक्ति समर्पण भावना उपनिषदों का बौद्धिक अद्वेतवाद तथा सामाजिक समन्वयबाद के विचार को लेकर चल रहा था । इस विचार के अनुसार जाति के आधार पर मानव का अलगाव नहीं हो सकता । मानव में भातृ - भाव पैदा करना इनका उद्देश्य था । महाराष्ट्र में प्रार्थना समाज की स्थापना हुई जिसने जातिप्रथा के विनय का संकल्प किया । स्वामी दयानंद सरस्वती ने आर्य समाज की स्थापना कर पूर्ण वैदिक समाज की स्थापना का संकल्प लिया । जहाँ जाति और वर्ण आधारित विषमता नहीं थी । स्वामी विवेकानन्द ने राम-क्रिष्ण मिसन की स्थापना का दलितों के उद्धार का धार्मिक आन्दोलन छेडा । ऐसे आंदोलनों की पृष्टभूमि ने सम्पूर्ण भारत, ब्रिटीश सत्ता के अधीन था । अंग्रेजी ने अपने देश में पालन होनेवाले सिद्धांत कानून के समक्ष समानता का प्रथम प्रवेश भारत में किया।

१९ वी सदी के उत्तरार्द्ध में शासन के लिए जो अंग्रेजी कानून लाए वे जाति के आधार पर किसी के साथ भेद करने वाले नहीं थे । उसी समय समाज सुधारकों की दौर धाराऐं उत्पन्न हुई रानाडे, आगरकर, और डॉ भंडारकर आदि इस राय के थे कि; समाज सुधार का काम केवल सामाजिक और धार्मिक स्थर पर किया जा सकता है, किन्तु वाल

गंगाधर तिलक का राय थी कि, इस पर सामाजिक और राजनीतिक दोनों स्थर पर कार्य होनी चाहिए । अंग्रेजी सत्ता राजनीतिक कारणों से इस सामाजिक वटवारे को को जिन्दा रखना चाहती है । इसीलिए इसे राजनितिक चुनौती के रूप में ग्रहण करना चाहिए । लार्ड मेकालेक के शिक्षा नीति के अनुसरण से भारत में नये बौद्धिक, राजनितिक, चहल कदमी की शुरुवात हुई, तिलक, आगरकर गोखले के नेतृत्व में महाराष्ट्र के इलाके में रविन्द्रनाथ टेगोर, अरविन्द घोष, स्वामी विवेकानंद,जगदीश चन्द्र वोष आदि बंगाल में विजय राघवाचारी, पन्तुलु, रगेयानायडू, जी.सुभ्रमनियम अयर आदि ने दक्षिण भारत के क्षेत्र में और लाला लचपत राय स्वामी श्रद्धानन्द हंसराज गुप्त आदि ने उत्तरी हिन्दुस्थान में इसतरह के शेखिक सामाजिक एकता के आन्दोलन में अपने को उतरा । १९७३ में सत्य सोधक समाज की स्थापना करके ज्योतिवाफुले ने सामाजिक एकता के संग्राम को तेज किया । उन्होंने जाति - प्रथा के खिलाफ विद्रोह खड़ा कर दिया । उन्होंने जाति - प्रथा के खिलाफ विद्रोह खड़ा कर दिया । इन सम्पूर्ण आन्दोलन के प्रभाव के कारण भारतीय समाज में नयी जागृती आयी जिससे अंग्रेजी सत्ता के खिलाफ आंदोलनों को भी गति मिली । तिलक के बाद मोहन दास करम चाँद गाँधी दस्ता विरोधी आन्दोलन के सर्वश्रेष्ठ नेता हो गए, अगस्त १९२० को तिलक जी का देहावसान हुआ उसी दीन से गाँधी जी के नेतृत्व में प्रथम सविनय अवज्ञा आन्दोलन की शुरुवात हुई । तिलक जी व्दारा चलाए गए राजनीतिक और सामाजिक स्वतंत्रता के दोहरे संघर्ष की बागडोर गाँधी जी ने संभाला । इसीलिए आन्दोलन की शुरुवात कर उन्होंने कहा- " 'छुआछुत मिटाओ' को दूसरा स्थान नहीं दिया जा सकता । सामाजिक भेद के राक्षष को मारे बिना स्वराज्य का सपना अधुरा है । प्रथम बार कांग्रेस के सम्मलेन में दलितों के उद्धार के लिए प्रस्ताव प्रेरित किया है ।

डॉ अम्बेडकर ने दलितोद्धार आन्दोलन के माध्यम से दलितों को मानवाधिकार दिलाने के लिए देशव्यापी कार्यक्रम तैयार किया और देश भर के लोगों को एकजुट होकर संघर्षरत होने के लिए प्रेरित करने का बीड़ा उठाया । अछूतों के उद्धार के लिए वे चाहते थे कि दलित व शोषित में सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक रूप से जागृति आये । उनके दलितोद्धार कल्पना के पीछे न तो यश पाने का कोई भावना था और न ही कोई दिखावा था । वे स्वयं अछूत थे, उन्होंने अपने जीवन में कदम कदम पर अस्पृश्यता व अपमान का सामना किया था । उनका मुख्य चिंतन था, "दलितों को मानवीय अधिकार दिलाना था" ।

जाति एवं छुआछुत

डॉ अम्बेडकर को हिन्दू समाज में व्याप्त जाति प्रथा और उससे उत्पन्न छुआछुत के प्रति सर्वाधिक गुस्सा था । अपने जीवन में जाति से उत्पन्न उत्पीडन को इन्होने झेला था । इसीलिए समाज की इस भयंकारी बिमारी पर गहराई से सोचने का काम भी इन्होने किया । कोलोम्बिया विश्व विद्यालय के एन्थ्रोपोलोजी के ऊपर हुई चर्चा में वहाँ के प्रमुख विव्दान डॉ. गोल्डेन वेज़र के सानिध्य में पर्चा तेयार किया और उसे वेहेस के लिए प्रस्तुत किया । जिसका शीर्षक था 'भारत में जाति व्यवस्था'। उन्होंने जाति के निहित सिद्धांत और उसके व्यावहारिक दुष्परिणामों की विषद व्याख्या की । उन्होंने एक विद्वान का विश्लेषण उद्धत करते हुए कहा कि, "भारतीय जन अनेक मानवीय हिस्सों के मिश्रण से बने हुए हैं । इनमें आर्य, द्रविड़, मंगोल, आदि नस्लों को मिला कर भारतीय समाज बना है । उपयुक्त सभी जाति के लोक भारत में आक्रमणकारी के रूप में आए

और वहाँ के स्थायी निवासी होकर अपने अवशेष को छोड़ते गए ।

डॉ अम्बेडकर एक विव्दान् का उल्लेख करते हुए वे कहतें है कि, "किसी समुदाय के एक वर्ग व्दारा दुसरे वर्ग के किसी समुदाय को अलग रखने वाले धारा का नाम ही जाति है । इस व्यवस्था के अनुसार इत्तर वर्ग के साथ वैवाहिक सम्बन्ध न हीं होते न तो साफ़ जल ग्रहण करने की अनुमति होती है । न तो सम्मीलित योजना के प्रावधान होतें हैं । ऐसे सम्बन्ध शिर्फ अपने वर्ग के आदमी के साथ ही हो सकता है । जाति की परिभाषा ऐसे परिवारों की झुण्ड से ही की जा सकती है या गुटों की समूह से की जा सकती है ।

डॉ अम्बेडकर सभी विचारों को उद्धृत कर उनकी समिक्षा की और भारत के संदर्भ में, जाति के विषय में उन्होंने कहा, "संपूर्ण भारतीय समाज को एक ईकाई और निश्चित ढांचा दुसरे से किसी तरह का संपर्क नहीं बना सकता । इन सभी ढांचों के अपने परंपरागत रीती रिवाजों और रहन सहन के ढंग है । जुंड की भावना ही जाति की विशिष्टता है । आधुनिक विश्व का कोई भी समाज आदिम युग के अवशेष से इस तरह चिपका हुआ नहीं मिलेगा, जिस तरह भारत का समाज चिपका है । उन्होंने जाति के मसीन की बृहद व्याख्या करते हुए कहा कि, "विधवा का सती होना अथवा संपूर्ण जीवन वेभव को अंगीकार करके रहेना, साथ ही विधुर रेहना यह सभी पद्धति जाति की शक्तिशाली संस्था को बनाये रखने के लिए हुआ। बहुपत्नी प्रथा जाति की एकमात्र विशिश्ष्टता है और सम्भवतः इसीसे जाति का उद्‌गम भी हुआ ।

उनके अनुसार भारत में ब्राम्हण जाति के लोग बहुत सारे बुराइयों के लिए जिम्मेदार हैं । लेकिन जहाँ तक गैर ब्राम्हण जातियों में भी जाति व्यवस्था के प्रचलित का सवाल है । यह उन ब्राम्हाणो की सामर्थ के ही कारण है । उन्होंने जाति के चार सूत्र गिनाए -

1. हिन्दू जाति में अनेकता के बावजूद सांस्कृतिक एकता है ।
2. बृहत सांस्कृतिक ढाँचे में जाति एक रमणशील तत्व है ।
3. जाति व्यवस्था का प्रारंभ एक जाति से है ।
4. वर्ग ही अनुसरण और नक़ल की प्रवृत्ती से जाति का रूप ग्रहण कर लिए ।

भारतीय समाज जो पवित्र अपवित्र ऊँच और नीच खाने में बटा है । ऐसे में यदि समाजवाद को स्वप्न से वास्तविकता के धरातल पर लाना है, तो सामाजिक सुधार ही इसकी बुनियाद होगी । जबतक सामाजिक क्रांति नहीं होगी सामाजिक समस्याएँ बनी रहेगी । जाति का राक्षस आपके मार्ग का रोड़ा है । जबतक जाति के राक्षस का आप संहार नहीं करेंगे । आखिर संगठन के रूप में जाति विनाशकारी संस्था है । इसमें व्यक्ति के प्राकृतिक गुणों, शक्तियों, भावनाओं, की परतंत्रता निहित है । यह गुलामी सामाजिक नियमों से संचारित है । यह ऐसी समाज व्यवस्था है, जिसमें संकीर्णता और स्वार्थपरता का भाव है । हिन्दू समाज के उच्चासन पर बैठे कुछ लोगों के हाथ में ऐसा हथियार है, जो अपने सामाजिक श्रेष्टता के भाव को अपने से निम्न लोगों पर जवरण आरोपित करतें हैं ।

जातिप्रथा के कारण हिन्दुओं में एक्य भाव समाप्त हुआ है । अपने ही लोगों के प्रति अपनत्व का भाव भर गया है । अगर मुसलमान निर्दयी रहें है तो हिन्दुओं में नीचता का भाव रहा है और नीचता का भाव क्रूरता के मुकाबले अत्यंत बत्तर है। चातुवर्ष की परम्परा को जिन्दा रखना कलंक है । राम ने शम्बूक का बद्ध किया, क्योंकि राम राज्य का आधार चातुवर्ण था । उन्होंने राज्य के कानून की रक्षा के लिए ऐसा किया । मनु का कहना है कि, शुद्र यदि वेद पढ़े तो उसके कान में गंगा डालो और कंठ काटलो । इसीलिए शम्बूक वध की

कथा आती है । इसीलिए इसका विकल्प यही है कि शास्त्र की महत्ता को समाप्त किया जाये । जाति के आधार पर भेद शास्त्रों की देन है । हिंदुत्व की रक्षा तभी संभव है जब ब्राम्हबाद का खात्मा कर दो । समता, स्वतंत्रता और बन्धुत्व पर स्थापित समाज ही लोकतान्त्रिक समाज होगा। यह बात स्वराज से ज्यादा महत्वपूर्ण है । अम्बेडकर कहतें है दुसरे मुल्क की जाति की व्यवस्था आर्थिक और सामजिक कसोटीयों पर टिकी हुई है । गुलामी और दमन को धार्मिक आधार नहीं मिला हुआ है, किन्तु हिन्दू धर्म में छुआछुत के रूप उत्पन्न गुलामी को धार्मिक स्वीकृति मिली है, इसीलिए भले ही गुलामी ख़त्म हो जाए पर छुआछुत ख़त्म नहीं होगा । छुआछुत तभी ख़त्म होगा जब सम्पूर्ण हिन्दू सामाजिक और जाति व्यवस्था को द्रस्थ किया जाये । उनका सिद्धांत सभी को समान न्याय देना नहीं, उनका नारा है-"स्थापित मान्यता के अनुसार न्याय"उन्होंने यह भी कहा है कि दलितों की गणना के सम्बन्ध में पक्षपात होता है और इसमें मुसलमान भी हमारा साथ नहीं देती ।

डॉ. अम्बेडकर ने हिन्दुओं की पांच धाराएँ मानी है-

1. अंधविश्वासी कट्टर पंथी
2. आर्य समाजी जो अन्धाविश्वासों के खिलाफ तो है, किन्तु वेदों के कट्टर समर्थक हैं ।
3. ३. वे जो हिन्दू धर्म के गलतियों को स्वीकार करते हुए भी उनकी निंदा नहीं करतें हैं । वे भगवान भरोसे है कि, अब स्वतः यह गलतियों ख़त्म हो रही है ।
4. वे है जो राजनीतिक है, इन पचड़ों झमलों में पड़ने से परहेज करतें हैं और कहतें है "स्वराज का काम ही मुख्य काम है । सामाजिक सुधार तो आजादी के बाद हो ही जाएगा ।"
5. वे है जो सामाजिक सुधार के काम को स्वराज से भी महत्वपूर्ण मानतें है ।

नीति फयुखा के लेखक नीलकंठ बाद वाले दिनों में राज्यारोहण की कक्षाओं में कहतें हैं कि, "राज्यारोहण के समय ब्राम्हण, क्षेत्रिय, वैश्य, शुद्र चार मुख्य मंत्री होतें थे । वे सभी मिलकर राज्यारोहण की प्रक्रिया पूरी करते थे, तब सभी वर्णों के लोग यहाँ तक कि सबसे निज वर्ण के लोग भी राजा को नहलाते थे । महाभारत के सभापर्व में इसबाद का उल्लेख है कि जनपद और कुलों में शूद्र भी सदस्य बनाये जाते थे । शुद्र मंत्री की दर्जा ब्राम्हाणो के बराबर था । वह गरीब और निज नहीं था कि प्रश्न यह है कि - पश्चिमी देशों के विद्वान, इस बात की खोज अभीतक नहीं कर पाए कि हिंदुस्थान में शूद्रों को गुलाम का दर्जा कब और क्यों मिला ।

बौद्ध धर्म चिन्तन

डॉ अम्बेडकर के लिए 'बुद्ध और उनके धर्म के भविष्य' और 'भगवान बुद्ध और उनका धर्म' के कुछ अनुभवों में बौद्ध धर्म पर विचार मिलता है । बुद्ध और उनके धर्म का भविष्य ही मुख्य प्रमाण है कि धर्मान्तरण के ठीक पहेले बाले वर्षों में उनके विचार बौद्ध धर्म के सम्बन्ध में मिलता है । यह लेख 'महाबोधि' पत्रिका के अप्रेल - मई १९५० के अंक में छपा । 'महाबोधि' सोसाइटी की स्थापना १८९२ ई. में 'अनागरिक धर्मपाल' जी ने की । उसी का अंक 'महाबोधि' पत्रिका थी, जो अंग्रेजी भाषा में छपनेवाली उस समय की प्रमुख पत्रिका थी ।

बुद्ध और उनका धर्म भविष्य नामक लेख 'संरचना में भले ही रफ़ लगता है; परन्तु इससे डॉ. अम्बेडकर ने बौद्ध धर्म को पूर्णतः परिभाषित नहीं किया या यह लेख अपने आप अव्यवस्थित है । यद्पी यह लेख छोटा है पर पांच खण्डों में विभाजित है । प्रत्येक खंड में एक विशेष विषयवस्तू । प्रथम खंड में यह दर्शाया गया कि अन्य तीन प्रमुख धर्म संस्थापकों में बुद्ध किस

प्रकार भिन्न हैं । दुसरे खंड में जो सबसे बड़ा है; उन्होंने बौद्ध धर्म और हिन्दुइजिम की आपस में तुलना की है । तीसरे खंड में उन्होंने बौद्ध धर्म के पुनरुद्धार में अपना विश्वास जताया है। चौथे खंड में उन्होंने यह निष्कर्ष निकला है कि, "गैर हिन्दू धर्म की तुलना में बौद्ध धर्म का नया क्या स्थान है और पांचवे खंड में वे उन तीनो बातों को स्पष्ट करतें हैं; जो बौद्ध धर्म के प्रचार प्रसार के लिए आदर्श बने । डॉ अम्बेडकर का कहना है कि, बुद्ध और आम आदमी में जो अंतर है वह इसीलिए नहीं कि बुद्ध को कोई ऊँचा पद प्राप्त है, वल्कि उन्होंने उच्च आध्यात्मिक स्थर प्राप्त किया है । जिस अर्थ में ईश्वर का पुत्र इसा था उस अर्थ में अन्य कोई नहीं हो सकता और उसी प्रकार क्रिष्ण के समान कोई परमेश्वर नहीं हो सकता; किन्तु कोई भी व्यक्ति यदि बुद्ध के समान प्रयास कर सकता है । और बुद्ध के समान आध्यात्मिक विकास करता है। तो बुद्ध के सामान आम आदमी हो सकता है उन्होंने ऐसा कुछ प्राप्त नहीं किया जो आम आदमी प्राप्त नहीं कर सकता, उसी प्रकार ऐसा कहेने में कि बुद्ध ने अलौकिक शक्ति प्राप्त करने का दावा नहीं किया या अपनी अलौकिक शक्ति का चमत्कार नहीं दिखाया । डॉ. अम्बेडकर का आशय अलौकिक शक्ति को नकारने का नहीं है, जो इश्वर का बेटा होने के कारण इसा को प्राप्त थी या अपनी ध्यान साधना के कारण बुद्ध को प्राप्त थी । अलौकिक शक्ति आम आदमी की मन की शक्ति का ही विस्तार है । और जो व्यक्ति ध्यान साधना का अभ्यास करता है, वह उसे प्राप्त कर सकता है । यह ज्ञान होती है; जिससे सम्बोधि की प्राप्ति होती है । बुद्ध कभी भी अपने अलौकिक जन्म और अलौकिक शक्ति का दावा नहीं करते, इसीलिए वे अपनी शिक्षाओं को इसा - मुहम्मद और क्रिष्ण की शिक्षाओं के समान देविक नहीं मानते । डॉ अम्बेडकर के शब्दों में बुद्ध ने अपने सिद्धांतों को आम आदमी के रूप में फैलाया । ये अनिच्छुक व्यक्ति के कानों में जबरदस्ती ठूंसने वाले शब्द नहीं थे । वल्कि एक सम्बोधि प्राप्त व्यक्ति व्दारा अपने साथियों के लिए थे जिन्हें अभी सम्बोधि प्राप्त नहीं हुई थी और वे व्यक्ति बुद्ध के सिद्धांतों को स्वीकार और अस्वीकार करने के लिए स्वतंत्र थे । बुद्ध ने लोगों को आदेश नहीं दिया वल्कि उन्हें परामर्श दिया, प्रोत्साहित किया और प्रेरित किया । उन्होंने दुसरे व्यक्तियों को शारीरिक रूप से उठाया और आध्यात्मिक जीवन के लक्ष तक नहीं छोड़ दिया वल्कि उन्होंने लोगों को ऐसा रास्ता दिखाया जहाँ वे स्वयं ही अपने दोनों पैरों पर चलकर जा सकते थे । इसीलिए डॉ. अम्बेडकर ठीक ही कहते हैं कि, बुद्ध ने 'मोक्षदाता' और 'मार्गदाता' होने में भेद रखा । डॉ. अम्बेडकर ने महापरिवर्तन सूत के जिस अंश की बात करतें है लोग उसे भालिभातीं परिचित है । उसमें बुद्ध इस संसार से बिदा होते समय अपने श्रद्धावान अनुचर आनंद से केहेतें हैं कि - "मेरे चले जाने के बाद यदि संघ चाहे तो छोटे मोटे नियमों में परिवर्तन कर सकता है" । परन्तु संघ ने ऐसा नहीं किया । बुद्ध ने परिनिर्वाण के कुछ दिनों बाद ही इस मामले पर विचार करते हुए बुद्ध के अनुयायियों ने बुद्ध की अनुमति को स्वीकार नहीं किया बुद्ध के शिक्षकों उनकी परख करने के लिए अनुमति इसीलिए दी थी कि भिक्षु उन नियमों का पालन करतें हैं या छोड़ देतें हैं । अम्बेडकर बिना किसी संदेह के कहा कि यदि इस प्रकार की परख की कोई बात थी तो भिक्षुओं ने उसे असफल कर दिया, क्योंकि बुद्ध नहीं चाहते थे कि, उनका धर्म हमेशा सदाबाहार और उपयोगी बना रहे । यही कारण है कि - उन्होंने अपने अनुयायियों को परिस्थिति और आवश्यकतानुसार संशोधन की स्वतंत्रता दे रखी थी। इन सबका निष्कर्ष निकालते हुए डॉ अम्बेडकर समझ गए कि बुद्ध के महापरिनिर्वाण के २५०० वर्ष बाद भी बुद्ध की शिक्षाओं का ऐसिया

के बौद्ध देशों में उनके मौलिक रूप में अनुपालन होता रहा।

अम्बेडकर का विश्वास है कि संसार बौद्ध धर्म को ही अपनाएगा; क्योंकि कुछ धर्म एक सर्त को पूरी कर सकतें हैं । कुछ दी सर्तों को केवल बौद्ध धर्म ही उन सभी सर्तों की पूर्ति करता है; क्योंकि नया संसार पुराने से बहुत भिन्न है । पुराने संसार से कुछ अधिक ही बौद्ध धर्म है । जिन लोगों ने बुद्ध पर लिखा है वे शिर्फ़ बुद्ध का अहिंसा मार्ग को ही बताया है । अम्बेडकर अहिंसा के महत्व को कम नहीं करना चाहते, क्योंकि यह बुद्ध का बड़ा सिद्धांत है और जबतक इसका पालन नहीं होगा तबतक संसार को बचाया नहीं जा सकता । फिर भी इस बात पर जोर देतें हैं कि; बुद्ध ने अहिंसा के अतिरिक्त अपने धर्म के बीच समता ही नहीं सिखाये वल्कि आदमी और महिला के बीच समता का पाठ पढाया । संक्षेप ऐसा कोई धार्मिक गुरु नहीं मिल सका जिसकी बुद्ध से तुलना की जा सके । किसी भी बड़े विद्वान के लिए बौद्ध धर्म का ज्ञान प्राप्त करना वास्तव में असंभव है, क्योंकि वह इतने व्यापक हैं कि पाली, संस्कृत और तिब्बती भाषाओँ में फैले हुए है ।

डॉ अम्बेडकर के अनुसार बुद्ध ने तीन कारणों से भिक्षु संघ स्थापित किया -

1. आदर्श समाज का नमूना पैस करना
2. सर्वोत्कृष्ट प्रबुद्ध वर्ग बनाना
3. एक ऐसे समाज का निर्माण करना जो लोगों के मुक्त सेवा कर सके

बौद्ध समाज के वे लोग जो अधिक अनुपालन करते हैं और जो कम अनुपालन करतें हैं उनके लिए एक आदर्श नमूना पैस किया गया जिनको अम्बेडकर भिक्षु और उपासक कहतें हैं । भिक्षु संघ स्थापित करने के दो कारण है - भिक्षु संघ सच्चा, निष्पक्ष मार्ग प्रदर्शन करता है । बुद्ध ने भिक्षुओं को संपत्ति रखने का निषेध किया है । क्योंकि संपत्ति रखने का स्वामित्व स्वच्छंद रूप से सोचने और स्वतंत्र रूप से अनुपालन करने में बाधा है । बुद्ध ऐसे समाज का निर्माण करना चाहते थे कि भिक्षु लोग विवाह करें । सम्भवतः उनका यह मत था कि व्यक्ति तो स्वामियों की सेवा नहीं कर सकता ।

गांधीवादी, अम्बेडकरवादी, और मार्क्सवादी दृष्टिकोण

गांधीवादी और अम्बेडकरवादी

महत्मा गाँधी और डॉ. अम्बेडकर के दृष्टिकोणों पर अलग - अलग विचार करने के बाद हमें दोनों के वैचारिक मत - भेद पर भी थोडा विचार कर लेना चाहिए । इसे समझने के लिए निम्नलिखित बिन्दुओं को आधार बनाया जा सकता है -

1. जहाँ गांधीजी वर्ण व्यवस्था को बनाये रख कर जाति - पांति में ऊँच - नीच और छुआछुत को मिटाना चाहते थे, वहाँ डॉ. अम्बेडकर वर्ण - व्यवस्था की समाप्ति के बिना छुआछुत, ऊँच - नीच की भावना की समाप्ति असम्भव मानतें थे ।
2. गांधी जी अंतर्जातीय विवाह और खान - पान के विरोधी थे, अम्बेडकर इसके समर्थक थे ।
3. राजनीतिक - प्रशासनिक चुनाव के लिए जहाँ गाँधी जी सम्मिलित चुनाव क्षेत्र की बात करते थे, वहाँ डॉ. अम्बेडकर दलितों के लिए अलग से प्रतिनिधित्व के मुद्दे पर बल देते थे । अन्ग्रेज़ शासकों के सम्मुख अलग चुनाव क्षेत्र के लिए डॉ. अम्बेडकर के प्रस्ताव पर गाँधी जी ने आमरण अनशन किया था । उनकी प्राण रक्षा के लिए अम्बेडकर को विवश होकर सम्मिलित चुनाव के लिए, “पुना पेक्ट” को गलत मानते हुए भी हस्ताक्षर करना पड़ा था।
4. दलितों के उद्धार के लिए गांधी जी ने उन्हें हरिजन नाम दिया था, जो अम्बेडकर को स्वीकार नहीं था । इनका कहना था कि यदि

दलित हरिजन है तो सवर्ण क्या है ? वस्तुतः हरिजन नाम दक्षिण के मंदिरों में देवदासियों से उत्पन्न अवैध संतानों को दिया जाता था, अतः दलितों के लिए इस नाम को डॉ. अम्बेडकर अपमान समझते थे ।

5. गांधीजी ने अपने को सनातनधर्मी हिन्दू कहेते हुए वेद, पुराणादि हिन्दू धर्म - ग्रंथों के प्रति अपने विश्वास की घोषणा की थी, लेकिन डॉ. अम्बेडकर ने सारे धर्म - ग्रंथों झूठ का पिटास घोषित करते हुए स्वयं हिन्दू धर्म त्याग कर बौद्ध धर्म को ग्रहण किया था ।

उपयुक्त तथ्यों से अवगत होने के पश्चात यह स्पष्ट हो जाता है कि गाँधी जी अपेक्षा डॉ. अम्बेडकर का चिंतन और दृष्टिकोण अधिक क्रांतिकारी और वैज्ञानिक था । भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों का समावेश और दलितों के लिए सभी क्षेत्रों में आरक्षण की व्यवस्था में सर्वाधिक योगदान डॉ. अम्बेडकर का ही है ।

मार्क्सवादी दृष्टिकोण

मार्क्सवादी विचारधारा परिवर्तनवादी और प्रगतिशील साहित्यधारा के रूप में विकसित हुई । मार्क्स का मुख्य लक्ष था शोषण मुक्त समाज का निर्माण करना । समाज मनुष्य शोषण मुक्त हो और उन्हें भौतिक एवं मानसिक प्रगति का सामान अवसर मिले ।

मार्क्स पूंजीवादी व्यवस्था का विरोध करते थे । वैसे तो कार्ल मार्क्स की सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचना 'दास कैपिटल' है । लेकिन इससे पूर्व ही १८४८ में मार्क्स और एंगेल्स ने 'कम्युनिष्ट पार्टी का घोषणा पत्र' लिखा था । इसमें उन्होंने क्रांति के लिए सर्वहारा वर्ग के महत्व की घोषणा करते हुए - "पूंजीपति वर्ग के खिलाफ आज जितने भी वर्ग खड़े हैं, उनमें सबमें वास्तविक रूप से क्रतिकारि वर्ग केवल मजदुर वर्ग हैं ।"

मार्क्स के अनुसार - "मजदुर अपनी श्रमशक्ति पूंजीपति के हाथों बेज देने को विवश है ।" एसी स्थिति सर्वहारा वर्ग संगठन और संघर्ष के लिए विवश हो जाता है । मार्क्स ने पूंजीवादी व्यवस्था को नष्ट करने के लिए मजदूरों के हाथों में वर्ग संघर्ष का हथिआर दिया और विश्व में परिवर्तन लाने के लिये भी मजदुर वर्ग पर ही जिम्मेदारी सोंप दी । मार्क्स ने इस बात का पुरयाकिन दिलाया कि, वर्ग संघर्ष ही शोषण मुक्ति का क्रन्तिकारी हथियार है । क्रांति और संघर्ष व्दारा समाज को परिवर्तित करने की जिम्मेदारी मेहनतकश मजदुर वर्ग को ही निभानी होगी । मार्क्स का मानना था कि इस क्रांति को वास्तविकता का रूप देने के लिए सर्वहारा वर्ग को राजकीय और सामाजिक दृष्टि से शिक्षित करना आवश्यक है । यह महत्वपूर्ण कार्य साहित्य के माध्यम से ही हो सकता है । इसीलिए कहा गया है कि "Marx found in art of powerful weapon to educate the masses". मार्क्सवादी साहित्य परिवर्तनशील साहित्य है और प्रगतिशील भी । मार्क्सवादी साहित्य यथार्थवादी होने के साथ अभिव्यक्ति का माध्यम है और क्रांति का साधन भी । पूंजीवादी व्यवस्था के अंत हो जाने पर ही वर्ग - विहीन समाज का निर्माण हो सकेगा यह कार्य मार्क्सवादी दृष्टिकोण से ही हो सकता है । मार्क्सवादी प्रकृति और समाज के विकास को निर्देशित करनेवाले नियमों का विज्ञान है । मार्क्सवाद शोषित और दमित लोगों की क्रांति का विज्ञान है, सभी देशों में समाजवाद की जीत का विज्ञान है और सम्यवादी समाज के निर्माण का विज्ञान है। एक विज्ञान के रूप में मार्क्सवाद अचल नहीं रह सकता, यह विकासमान और संघर्ष की ओर अग्रसर रहता है । मार्क्सवाद परिवर्तन की अदम्य इच्छा रखता है । सर्वहारा वर्ग को बेड़ियों और जंजीरों से मुक्त होने और अँधेरे से आलोक की ओर जाने के लिए प्रेरित

करता है । मार्क्सवादी मुक्ति का वादा करतें हैं और क्रांति का बिगुल बजाते हुए वर्ग - वर्ण विभक्त सामाजिक संरचना को तोडकर समाजवादी व्यवस्था का सुनहरा सपना दिखातें हैं । मार्क्सवादी साहित्य जीवन साहित्य है । मार्क्सवादी की विकासशीलता का एक पक्ष यह भी है कि बीसवीं सदी में पूँजीवाद के आर्थिक और राजनीतिक इतिहास की विभिन्न अवस्थाओं और जन - आन्दोलन की जरूरतों के मुताबिक़ मार्क्सवाद को विकसित करने का प्रयास भी किया गया है ।

मार्क्स ने कहा था कि "दार्शनिकों ने दुनिया की तरह - तरह से व्याख्या की है, पर मुख्य सवाल उसको बदलने का है।"

निष्कर्षतः मार्क्सवादी चिंतन ने ऐतिहासिक भौतिकवादी सिद्धांत को स्वीकार है और मानव समाज को व्द्न्दात्मक चिंतन के माध्यम से समझाया गया है । उन्होंने विश्व की पूँजीवादी व्यवस्था को नकारते हुए उसकी आलोचना की है और साम्यांवादी व्यवस्था की स्थापना के लिए संघर्ष किया है । मार्क्सवादी चिंतन ने विश्व के समस्त सर्वहारा - दलित वर्ग को संगठित होकर संघर्ष करने की प्रेरणा दी है । वर्ण केन्द्रित होने के कारण डॉ. अम्बेडकर की दृष्टि पर केन्द्रित मार्क्सवाद से प्रायः टकराती रही है । अपनी मान्यताओं में न मार्क्सवाद गलत हैं और न अम्बेडकरवाद । भारतीय समाज - व्यवस्था में ही एसी विडंबना है, जो दोनों की दृष्टि में उभर कर सामने आता है । राजनीतिक क्षेत्र में देखें तो मायावती के लिए अब मुट्ठीभर ब्राम्भण उतने बड़े शत्रु नहीं, जितने कि कम्युनिष्ट हैं । उत्तरप्रदेश के साथ ही विहार, मध्यप्रदेश आदि ने भी यही स्थिति है । एसी स्थिति में दलित लेखकों को अपनी समाज - समीक्षा में सावधानीपूर्वक विचार करना होगा । बहुत से दलित लेखक इस दिशा में सक्रिय हैं और भारतीय कम्युनिष्ट भी इस दिशा में पहल करते हुए दिखाई दे रहें हैं ।

दलितों का मुक्ति संग्राम

भारतीय समाज व्यवस्था का नया मुक्ति-संग्राम में दलितों

मनुबादी परम्परा के साथ अपना मुक्ति - संग्राम लाने के बाद दलित अपनी अलग पहचान करने तथा खुलेपन से जीने के लिए आगे बढ़ रहा है । अपने अस्थित्व के लिए उन्होंने अपनी अलग पहचान बनाना शुरू किया है । चाहे वह साहिया के माध्यम से हो या राजनीति के माध्यम से हो। घृणा, उत्पीडन, हताशा, अवमानना, संत्रास, और ऐसी अन्य घटनाओं से अब वह सजग हो गया है। इस प्रकार की असंख्य घटनाओं से वह हमेशा परेशान रहता था, किन्तु आज वह इसका डटकर सामना करने में समर्थ हो गया है । स्वतंत्रता के साठ वर्ष बाद भी दलित की स्वतंत्रता पर कोई फर्क नहीं आया है । बात वही है कि आधुनिक तौर तरीके अपनाये जा रहे है । देश में जनसंख्या का छठा भाग, सामजिक और धार्मिक अयोग्यताओं के कारण शताब्दियों से शोषित और उत्पीडित रहा है । अतः यह जरुरी हो गया है कि उनकी सुरक्षा व्यवस्था पश्चिमी देशों जैसी हो ।

अनुसूचित जातियों की सुरक्षा और उत्थान के लिए सवैधानिक प्रावधान और सरकारी प्रयास किये गए हैं । जैसे -

1. सामाजिक संरक्षण -संविधान के अनुच्छेद १५(२) के तहत दुकानों, सार्वजनिक भोजनालयों, मनोरंजन स्थलों, कुओं, तालाबों, स्नान घाटों, सड़कों और सरकारी घन से पूरी तरह संरक्षित किसी भी स्थान के उपयोग सम्बंधी सभी योग्यताएँ, रुकवटें और शर्तें समाप्त करता है । विशेष अदालतें भी गठित की गयी है। बिना भेद भाव के विद्यालयों में प्रवेश का अधिकार प्रदान किया गया है।

राष्ट्रीय 'अनुसूचित जाति तथा जनजातीय आयोग' का गठन किया गया ।

2. राजननीतिक आरक्षण संविधान की धारा ३३०, ३१२ और ३३४ के अंतर्गत लोकसभा और राज्यों की विधान सभाओं के लिए स्थान आरक्षित किये गए ।

3. व्यावसायिक उत्थान के कार्यक्रम

स्वतंत्रता के साठ वर्ष बाद यह महेसुस किया गया कि अनुसूचित जातियों को सरकारी योजनाओं का लाभ इन गरीब तबकों को सही समय पर मिले, गरीबी रेखा के निचे जीवन ज्ञापन करने वालों को कृषि, पशुपालन, कुटीर उद्योगों, शिक्षा, स्वस्थ और आवास योजनाओं के लिए ऋण उपलब्ध करतें हैं ।

4. अत्याचारों की रोकथाम -

दलितों पर अत्याचार (हत्या, बलात्कार, आगजनी, और हिंसा) को रोकने के लिए अधिनियम को लागू किया गया । यह अपराध रोकने हेतु दंड सहिंता में कठोर दण्ड का प्रावधान रखा गया ।

आज का आइना अजीबोगरीब है । बड़े ही सही तरीके से दलित बच्चों को पढाने से दूर रखा जाता है । मेरिट से दूर रखना, स्कूलों में फ़ीस ज्यादा रखना । साक्षात्कार में अपमान करना । उच्च शिक्षा से वंचित रखना । क्योंकि वह जानतें हैं की इन बच्चों को आगे आने का अवसर मिला तो वह सबसे अच्छे निकलेंगे ।

आर्थिक रूप से पिछड़ी जातियों का अपमान करने के लिए ऊँची जातियाँ छिपे हुए और नफीस तरीके नहीं अपनाती वल्कि उनका खुले तौर पर अपमान करती है । केंद्रीय विश्विद्यालय इस मामले में सबसे आगे हैं । आरक्षण को सरकारी दान ठहराकर मजाक उड़ाया जाता है । दलित शोधार्थी के साथ सौतेला व्यवहार तथा कम दर्जा दिया जाता है । दलित औरतों को नंगा घुमाया जाता है। ऐसे अनेकों उदाहरण भारत देश में रोज़ ही देखने को मिलतें है ।

एक एसी नयी समाज - व्यवस्था रची जाए जिसमें नया संगठन अलग देश की स्थापना के रूप में होना चाहिए । इसके विपरीत 'हिन्दू' समाज में मंदिरों का बढ़ता चलन, पंडितों के धर्म प्रचार, आदि को खुले आम बंद करना होगा । समान अधिकारों की भाषा को आगे बढ़ना चाहिए। समान आर्थिक साधनों का बँटवारा होना चाहिए । तभी इस गरीब जनता का उद्धार होगा । अन्यथा अन्याय के खिलाफ १८५७ जैसा ज्वालामुखी उभर कर सामने आयेगा और उसे रोकना कठिन होगा ।

हिंदी दलित साहित्यों में महिलाओं का प्रतिनिधित्व

अज्ञान दलितों का शत्रु है । इसी को मध्य नजर रखते हुए महाराष्ट्र में सत्य शोधक समाज के संस्थापक महात्मा ज्योतिबा फुले, छत्रपति शाहूजी महाराज आदि विचारकों ने इस विद्रोह की शुरूवात की । उन्होंने शिक्षा के महत्व को बुनियादी ताकत प्रदान की और इसका दलितों को फाएदा हुआ । वर्ण भेद, जाति भेद और धार्मिक असमानता की स्थितियों को समाप्त कर समतामूलक स्वस्थ मानवी समाज बनाया इन विचारकों ने ।

डॉ. अम्बेडकर ने नारी के सर्वांगीण विकास के पक्ष में समय - समय पर वैचारिक लड़ाई लड़ी । स्त्री शिक्षा के बारे में उनके विचार ज्यादा ही व्यापक थे । वह यह समझते थे कि दलित पुरुषों की अपेक्षा दलित स्त्री की स्थिति अत्यंत दयनीय है । स्त्री के दर्द को उन्होंने शिक्षा के माध्यम से हल करने की कोशीश की। शिक्षा के सम्बन्ध में वह स्त्री - पुरुष को समान शिक्षा के प्रबल समर्थक थे।

यह दुखद है कि दलित वर्ग के शिक्षा की दर काफी कम है और उसमें माहिलोओं की संख्या नाममात्र है । स्वतंत्रता के पचास साल के बाद भी स्त्री पक्ष शिक्षा के सन्दर्भ में कमजोर है । इसमें

महिलाओं की कमजोरी यह भी है कि वह भी पुरुषों पर परम्परागत ढंग से निर्भर है । किन्तु आज परिस्थिति इसके विपरीत हो गयी है । जो बौद्धिक चेतना डॉ. अम्बेडकर ने चलायी थी उसका परिणाम देखने को मिल रहा है ।

सच कहा जाए तो दलित साहित्य ने महिलाओं को अपनी आपबीती कहने तथा लिखने को मजबूर किया है ।

कौशल्यवै बैसंत्री की आत्मकथा दोहरा अभिशाप

यह एक आत्म कथा है जिसमें दलित महिला का आक्रोश और अपनी अस्मिता को संभालने को महसूस किया जा सकता है । वह अपनी आत्मकथा की भूमिका में स्वयं पर बीती हुई परेशानी के सन्दर्भ में लिखती है ।

दलित स्त्री का शाप

इस लेख में रजत रानी मीनू लिखती है कि दलित महिला अब सिर्फ घरेलु महिला नहीं है । वह दलित पुरुषों के साथ कन्धा मिला कर सामाजिक आन्दोलन चलाने को प्रेरित कर रही है ।

मराठी दलित साहित्य में इस तरह के आक्रोशमय स्वर बहुत पहेले

उभर चुकें हैं । उसमें बेबी कांबले की आत्मकथा, नामदेव ढसाल की पत्नी मल्लिका अमरशेख की आपबीती कहानी 'मैं खाक में मिल जाना चाहती हूँ' प्रमुख है । यह बात दूसरी है कि वह दलित नहीं है लेकिन दलित जीवन से भली - भाँति परिचित है । दलित समाज में महिलाऐं अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाना चाहती है । साहित्य के पश्चात दलितों में चेतना लाने का कार्य कुसुम मेघवाल, मीनाक्षी मून, वीणा हजारिया, जमन बारुमाल, सुलेखा कुम्भारे, रजनी और हीरा नीमगड़े, मधुमाया जयंत आदि ने किया है ।

दैनन्दिन जीवन में अनेक प्रकार के दमन का शिकार स्त्री हो रही है । वह कदम - कदम पर अपमानित होती है ।

> "अरे हाँ - अपनी जिन्दगी को मैंने जिया कब?
> घर में पुरुषाहंकार एक गाल पर थप्पड़ मारता है तो
> गली में वर्ण अस्थिपत्य दुसरे गाल पर चोट करता है ।"
>
> स्वरुप रानी

डॉ. अम्बेडकर ने फुले और शाहू महाराज के विचारों को विकसित किया । इससे आज दलित महिला भी साहित्य के माध्यम से समाज में जागृति का कार्य कर रही है । बकौल मोहनदास नैमिशराय जब तक दालित समाज की महिलाऐं तेज़ी के साथ अपने क्रांतिकारी पतिओं/ पिताओं/ भाइयों तथा अन्य साथियों के साथ नहीं आयेंगी तब तक दलित आन्दोलन में पूर्णता नहीं आ सकेगी ।

दलित अस्मिता: अर्थ एवं अभिप्राय

पिछले दो ढाई हज़ार वर्षों से अछुत या शुद्र के रूप में दलितों की सबसे बड़ी समस्या रही है, अपनी अस्मिता को लेकर, अपनी सही पहचान को लेकर । ब्राम्हणबादी शास्त्रों, पुराणों और स्मृतियों के माध्यम से उन्हें बताया गया कि उनका दलित अस्तित्व दैवी विधान के तहत है । बाद में पूर्ण अव्देत की अपनी मान्यताओं के अंतर्गत शंकराचार्य ने ब्रम्ह और जगत की अव्दैतता स्थापित करते हुए केवल ब्रम्ह को सत्य सत्ता मान कर जीवन और जगत को मिथ्या सिद्ध किया। अम्बेडकर ने पहली बार ऐतिहासिक दृष्टि से भयानक झूठ का पर्दाफाश कर दलितों को उनकी वास्तविक स्थिति से परिचित करवाया और उससे छुटकारा प्राप्त करने का मार्ग उनके सामने

प्रस्तुत किया । डॉ. अम्बेडकर ने दलितों के पिछड़ेपन का सबसे बड़ा कारण उनकी अशिक्षा को माना है । अशिक्षित होने के कारण दलित विभिन्न परिस्थितियों से जूझता रहा है । अशिक्षित होने के कारण भारतीय दलित न तो अपने विरुद्ध ब्राम्हाणों व्दारा रचे शास्त्रीय विधानों को ठीक से समझ सके, वल्कि इस शोषण को अपनी नियति मानते रहे । बाबा साहेब ने इस तथ्य को गहराई और गंभीरता से समझा और दलित समाज को अपनी विचारों से प्रोत्साहित और प्रेरित करके दलित अस्मिता से सही पहचान कराने का प्रयास किया । उनके अनुसार शिक्षित हुए बिना दलित जीवन में परिवर्तन की कोई गुंजाइश नहीं है ।

डॉ. अम्बेडकर ने दलित अस्मिता की पहचान के लिए तथाकथित हिन्दू संस्कृति, धर्म, बड़े - बड़े ऋषियों - मुनियों व्दारा स्थापित आदर्शों के झूठ को उजागर करने के लिए उन पर पुनर्विचार करके दलितों के सामने एक नया आदर्श प्रस्तुत किया । उनका नारा था कि "शिक्षित बनो, संघर्ष करो" ।

महात्मा फुले की परम्परा को आगे बढाने के लिए डॉ अम्बेडकर ने दलितों की मुक्ति का आन्दोलन चलाया । इस आन्दोलन को आगे बढ़ने के लिए मराठी साहित्यकारों के बीच शरण कुमार लिम्बाले ने साहित्य के माध्यम से अथक प्रयास किया । हिंदी में ओमप्रकाश वाल्मीकि, जयप्रकाश कर्दम, डॉ. धर्मवीर, मोहनदास निमिशराय आदि ने अपनी रचनाओं व्दारा इस क्षेत्र में पहल की ।

दलित चेतना डॉ. अम्बेडकर के जीवन - दर्शन से मुख्य ऊर्जा ग्रहण करती है। दलित अस्मिता की पहचान के लिए निम्नलिखित प्रमुख बिंदु है

1. मुक्ति और स्वतंत्रता के सवालों पर डॉ. अम्बेडकर के दर्शन को स्वीकार करना ।
2. बुद्ध का अनीश्वरवाद, अनात्मवाद, वैज्ञानिक दृष्टी बोध, पाखण्ड कर्मकाण्ड विरोध ।
3. वर्ण व्यवस्था विरोध, जाति भेद विरोध, साम्प्रदायिकता विरोध ।
4. अलगाववाद का नहीं, भाईचारे का समर्थन ।
5. स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय की पक्षधरता ।
6. सामाजिक बदलाव के लिए प्रतिबद्धता ।
7. आर्थिक क्षेत्र में पूंजीवाद का विरोध ।
8. सामंतवाद, ब्राम्भणबाद का विरोध ।
9. अधिनायाकबाद का विरोध ।
10. महकाव्य की रामचंद्रशुक्लीय परिभाषा से असहमति ।
11. पारंपरिक सौंदर्यशास्त्र का विरोध ।
12. वर्ण विहीन, वर्गविहीन समाज की पक्षधरता ।
13. भाषावाद, लिंगवाद का विरोध ।

ये सारे बिंदु मिलकर अम्बेडकर का रूप ग्रहण करतें हैं । लेकिन अम्बेडकर के तीन नारे 'शिक्षित बनो, संगठित हो और संघर्ष करो में इनके व्दारा स्वीकृत संघर्ष के अभिप्राय को समझना अवश्यक है । इनका संघर्ष कार्ल मार्क्स के वर्ग संघर्ष से जरा हट कर शांतिपूर्ण संघर्ष है । इस संघर्ष में सवर्णों व्दारा दलितों के लिए निर्धारित पेशों से मुक्ति पाना है ।

डॉ. गंगाधर पानतावणे भी इसी तथ्य पर जोर देते है कि - "दलित साहित्य में दलित चेतना की प्रेरणा न मार्क्सवाद है, न हिन्दुवाद, न् ब्लैक । दलित चेतना की प्रेरणा केवल अम्बेडकर हैं ।"

अस्मिता के लिए सबसे सशक्त संघर्स साहित्यिक धरातल पर हुआ । क्योंकि जिस शुद्र के लिए शिक्षा प्राप्त करने का निषेध था उसके लिए साहित्य में प्रवेश करना संभव नहीं था । वह साहित्य में आया भी तो दास की हैसीयत से । लेकिन धीरे - धीरे दलितों में शिक्षा का प्रचार व प्रसार हुआ । स्वतंत्रता के पश्चात दलित पढ़ - लिख कर साहित्य में आये । हिंदी साहित्य के दलित लेखकों की रचनाऐं चेतना से परिपूर्ण और दलित अस्मिता के लिए संघर्ष को दर्शाती है ।

हजारों वर्षों से दलित शोषित, शिक्षा से वंचित, सत्ता से बाहार, समाज से वहिष्कृत रहा । लेकिन आज दलित लेखक दलित अस्मिता के लिए दलित को मनुष्यता का एहसास करवाकर उसमें आत्मसम्मान और स्वभिमान पैदा करने के लिए संघर्षरत है । दलित अस्मिता के लिए संगठित और शिक्षित होकर सामाजिक न्याय के लिए गैर दलितों के मन और विचारों को परिवर्तित करने का प्रयत्न कर रहा है ।

दलित अस्मिता से एक नयी स्वतंत्र, ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक दृष्टि का निर्माण होता है । जहाँ - जहाँ शिक्षा का प्रसार अधिक हुआ और दलित संगठित हुए वही दलित अस्मिता का विस्फोट हुआ ।

उपयुक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि दलित अस्मिता का वास्तविक अर्थ स्वयं दलित होने या बनाये जाने के कारणों की जानकारी से जुडा हुआ है । ब्राम्भणवादी सवर्ण समाज छलपूर्वक हजारों वर्षों तक उन्हें अन्धकार में रखता आया है । यह जानकारी ही उनकी वास्तविक अस्मिता की पहचान है । इससे मुक्ति के लिए संघर्ष और स्वतंत्रता, समानता तथा बन्द्धुत्व पर आधारित जाति विहीन समाज की स्थापना इसका वास्तविक अभिप्राय है । अस्मिता की पहचान का अर्थ अपने - आपको उसी स्थिति में बनाये रखकर संघर्ष करना नहीं है इसका वास्तविक उद्देश्य जातिय जकडनों से मुक्ति के पश्चात् खुले में साँस लेना है और सारे समाज के साथ समानता स्थापित करना है ।

उपसंहार

दलित साहित्य के पर अध्ययन करने के पश्चात् ज्ञात हुआ कि _ ये एक ऐसी परंपरा है जिसके लिए सम्पूर्ण समाज दायी है । जबतक संपूर्ण समाज विचार और चिंतन में नहीं बदलेगा तबतक देश की प्रगति सम्भव नहीं है ।

दलित परंपरा के बारे में आम जनता को रूबरू करवाने में बहुत सारे रचनाकार आगे आये और उनके सफल प्रयासों ने देश में थोड़ी बहुत दलितों के ऊपर अत्याचारों की समस्याएँ कम होती गयीं । दलित साहित्यकार डॉ. भीमराव अम्बेडकर, ज्योतिबा राव फुले, ओमप्रकाश वाल्मीकि, नैमिष राय, प्रेमचंद, गाँधी जी आदि व्यक्ति विशेषों ने कैसे अपने प्राण को दाँव पर लगाये और समाज को सुधारने में जुड़े रहे । इसका पठन और मनन करके पाठक, दलितों के लिए कुछ कर गुजरने के प्रेरणा पाएगा ।

कोई भी परम्परा आसानी से खत्म नहीं होती । उनके भीतर समय -

समय पर कुछ बदलाव जरुर आता है और पाठक भी ये संकलन को

पढ़कर कुछ बदलाव जरुर चाहेगा । यही मेरा आत्म विश्वास है !

परिशिष्ट

जब हम दलित - साहित्य पर विचार करतें हैं, हमारे सामने मूलतः ये प्रश्न और उत्तर आतें हैं ।

- दलित - साहित्य क्या है ?

1. क्या दलितों के व्दारा लिखित साहित्य ही दलित - साहित्य है ?
2. इतर दलितों के व्दारा लिखित साहित्य क्या दलित - साहित्य है?
3. वस्तु के तहत उपन्यास, कहानी, नाटक, एकांकी का स्वरुप क्या है ?
4. विचार चिंतन का प्रारूप क्या है ?
5. काव्य - रूप (महाकाव्य, खण्ड काव्य, गीति काव्य) की कमी क्यों हैं ? यह विवाद का विषय है !
6. (च) दलित - साहित्य की समीक्षा, मुल्यांकन, सौन्दर्यशास्त्र विमर्ष (Aesthetic) लगभग नहीं के बराबर है । ऐसा क्यों ?
7. अतः ये सूत्र विचारणीय है ?

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1. अभय कुमार दुबे : आधुनिकता के आईने में दलित, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण २००२
2. ओमप्रकाश वाल्मीकि : दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, राधाकृष्ण, दिल्ली, संस्करण २००१
3. कवंल भारती : दलित विमर्श की भूमिका, इतिहास बोध, इलाहाबाद, संस्करण २००४
4. जयप्रकाश कदर्म : दलित विमर्श साहित्य के आईने में साहित्य संस्थान, गाजियाबाद, संस्करण २००६
5. तेज सिंह : आज का दलित साहित्य, आतिश प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण २०००
6. कृष्णदत्त पालीवाल : दलित साहित्य बुनियादी सरोकार, वाणी प्रकाशन, दरियागंज,नयी दिल्ली, संस्करण २००९
7. धर्मवीर : डॉ. अम्बेडकर और दलित आन्दोलन, शेष साहित्य, दिल्ली, संस्करण १९९६
8. भीमराव अम्बेडकर : अस्पृश्यता, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रन्थ अकादमी, संस्करण १९९२
9. माताप्रसाद : हिंदी काव्य में दलित काव्यधारा, विश्वविद्यालय, वाराणसी, संस्करण १९९३
10. रमणिका गुप्ता : दलित चेतना : साहित्यिक एवं सामाजिक सरोकार, समीक्षा, दिल्ली, संस्करण २००४